रुद्रहृदयोपनिषत्

मन्त्रयोग के 16 अंगों में 'पचाङ्गसेवन' के अन्तर्गत देवता विशेष के गीता, सहस्रनाम, स्तव, कवच एवं हृदय आते हैं। भगवान् शिव के उपासक को शिवगीता, शिवसहस्रनाम, शिवजी के स्तोत्र, कवच एवं हृदय का पाठ करना चाहिये। इस पुस्तक में शिवजी के अनेक स्तोत्र, कवच एवं सहस्रनाम दिये गये हैं। यहाँ पर हम 'हृदय' का पाठ दे रहे हैं। शिवगीता अलग से ग्रन्थाकार रूप में उपलब्ध है। अत: उसका पाठ इस पुस्तक में नहीं दिया गया है। हृदय का एक रूप 'रुद्रहृदयोपनिषत्' है जिसका यहाँ पाठ दिया जा रहा है।

रुद्रहृदयोपनिषत् का मूल पाठ

यद्ब्रह्म रुद्रहृदयमहाविद्याप्रकाशितम्।
तद्ब्रह्ममात्रावस्थानपदवीमधुना भजे।। 1 ।।
ॐ सह नाववत्विति शान्ति:* ।।
हरि: ॐ ।।
हृदयं कुण्डली भस्मरुद्राक्षगणदर्शनम्।
तारसारं महावाक्यं पञ्चब्रह्माग्निहोत्रकम् ।। 1।।

हरि: ॐ रुद्रहृदय, योगकुण्डली, भस्मजाबाल, रुद्राक्षजाबाल और गणपति–ये पाँच उपनिषद् प्रणव के मूल तत्त्व को बतलाते हैं। ये श्रुति के महावाक्य हैं, ब्रह्मज्ञानात्मक अग्निहोत्र के ये पाँच महामन्त्र हैं, अथवा मुक्ति की प्राप्ति के लिये पाँच ब्रह्म अर्थात् मन्त्रात्मक अग्निहोत्र हैं ।। 1 ।।

प्रणम्य शिरसा पादौ शुको व्यासमुवाच ह।
को देव: सर्ववेदेषु[1] कस्मिनदेवाश्च सर्वश: ।। 2 ।।
कस्य शुश्रूषणान्नित्यं प्रीता देवा भवन्ति मे।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच पिता शुकम् ।। 3 ।।
सर्वदेवात्मको रुद्र: सर्वे देवा: शिवात्मका:।
रुद्रस्य दक्षिणे पार्श्वे रविर्ब्रह्मा त्रयोऽग्नय: ।। 4 ।।
वामपार्श्वे उमा देवी विष्णु: सोमोऽपि ते त्रय:।
या उमा सा स्वयं विष्णुर्यो विष्णु: स हि चन्द्रमा: ।। 5 ।।
ये नमस्यन्ति गोविन्दं ते नमस्यन्ति शंकरम्।
येऽर्चयन्ति हरिं भक्त्या तेऽर्चयन्ति वृषध्वजम् ।। 6 ।।

---

* शान्तिपाठ इस प्रकार है।

ॐ सह नाववतु। स: नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै। तेजस्वि नावधीतमस्तु।
मा विद्विषावहै। ॐ शान्ति: शान्ति: शान्ति:।

1. कहीं–कहीं पर 'वेदेषु' की जगह 'देवेषु' पाठ मिलता है।

ये द्विषन्ति विरूपाक्षं ते द्विषन्ति जनार्दनम्।
ये रुद्रं नाभिजानन्ति ते न जानन्ति केशवम् ।। 7 ।।
रुद्रात्प्रवर्तते बीजं बीजयोनिर्जनार्दनः।
यो रुद्रः स स्वयं ब्रह्मा यो ब्रह्मा स हुताशनः ।। 8 ।।
ब्रह्मविष्णुमयो रुद्र अग्नीषोमात्मकं जगत्।
पुलिङ्गं सर्वमीशानं स्त्रीलिङ्गं भगवत्युमा ।। 9 ।।
उमारुद्रात्मिकाः सर्वाः प्रजाः स्थावरजङ्गमाः।
व्यक्तं सर्वमुमारूपमव्यक्तं तु महेश्वरम् ।। 10 ।।
उमा शंकरयोगो यः स योगो विष्णुरुच्यते।
यस्तु तस्मै नमस्कारं कुर्याद्भक्तिसमन्वितः ।। 11 ।।
आत्मानं परमात्मानमन्तरात्मानमेव च।
ज्ञात्वा त्रिविधमात्मानं परमात्मानमाश्रयेत् ।। 12 ।।
अन्तरात्मा भवेद्ब्रह्मा परमात्मा महेश्वरः।
सर्वेषामेव भूतानां विष्णुरात्मा सनातनः ।। 13 ।।
अस्य त्रैलोक्यवृक्षस्य भूमौ विटपशाखिनः।
अग्रं मध्यं तथा मूलं विष्णुब्रह्ममहेश्वराः ।। 14 ।।
कार्यं विष्णुः क्रिया ब्रह्मा कारणं तु महेश्वरः।
प्रयोजनार्थं रुद्रेण मूर्तिरेका त्रिधा[1] कृता ।। 15 ।।
धर्मो रुद्रो जगद्विष्णुः सर्वज्ञानं पितामहः।
श्रीरुद्र रुद्र रुद्रेति यस्तं ब्रूयाद्विचक्षणः ।। 16 ।।

श्रीशुकदेवजी ने व्यासजी के चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम किया और बोले, 'भगवन्! बतलाइये, सब वेदों में किस एक देवता का प्रतिपादन हुआ है और किसमें सारे देवता वास करते हैं? किसकी सेवा-पूजा करने से सर्वदा सब देवता मुझ पर प्रसन्न रहेंगे?' श्रीशुकदेवजी की इस बात को सुनकर उनके पिता उनसे बोले- "शुक! सुनो- भगवान् रुद्र सर्वदेवस्वरूप हैं, और सब देवता रुद्रस्वरूप हैं। रुद्र के दक्षिण पार्श्व में सूर्यभगवान्, ब्रह्माजी तथा गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि और आहवनीय-ये तीन प्रकार के अग्निदेव स्थित हैं। वामपार्श्व में भगवती उमा, विष्णु भगवान् और सोम- ये तीन हैं। जो भगवती उमा हैं, वही विष्णुभगवान् हैं और जो विष्णुभगवान् हैं, वही चन्द्रमा हैं। जो गोविन्द को नमस्कार करते हैं, वे शङ्करजी को नमस्कार करते हैं। और जो भक्तिपूर्वक विष्णुभगवान् की अर्चना करते हैं, वे वृषभध्वज अर्थात् शङ्करजी की ही पूजा करते हैं। जो विरूपाक्ष अर्थात् भगवान् आशुतोष

1. कहीं-कहीं पर **'त्रिधा स्थिता'** पाठ मिलता है।

से द्वेष करते हैं, वे जनार्दन से ही द्वेष करते हैं। जो रुद्र को नहीं जानते, वे केशव को भी नहीं जानते। रुद्र से बीज उत्पन्न होता है और उस बीज की योनि (अर्थात् क्षेत्र) विष्णुभगवान् हैं। जो रुद्र हैं, वे स्वयं ब्रह्मा हैं और जो ब्रह्मा हैं, वे अग्निदेव हैं। रुद्र ब्रह्मा और विष्णुस्वरूप हैं। और अग्नि-सोमात्मक समस्त जगत् भी रुद्र ही है। सृष्टि में जितने पुँल्लिङ्ग प्राणी हैं, सब महेश्वर हैं और जितने स्त्रीलिङ्ग प्राणी हैं, सब भगवती उमा हैं। सारी स्थावर और जङ्गमस्वरूप सृष्टि उमा-महेश्वररूप है। समस्त व्यक्त जगत् उमा का स्वरूप है। और अव्यक्त जगत् महेश्वर का स्वरूप है। उमा और शङ्कर का योग ही विष्णु कहलाता है। जो उन विष्णुभगवान् को भक्तिपूर्वक नमस्कार करते हैं, वे आत्मा, परमात्मा और अन्तरात्मा-इस त्रिविध आत्मा को जानकर परमात्मा को प्राप्त होते हैं। अन्तरात्मा ब्रह्मा हैं और परमात्मा महेश्वर हैं। और सभी प्राणियों के सनातन आत्मा विष्णुभगवान् हैं। इस त्रिलोकीरूप वृक्ष के, जिसके तने और शाखाएँ भूमि पर फैली हुई हैं, अग्रभाग विष्णु हैं। मध्य (तना) ब्रह्मा हैं और मूलभाग भगवान् महेश्वर हैं। विष्णु कार्यरूप हैं, ब्रह्मा क्रियारूप हैं और महेश्वर कारण-स्वरूप हैं। प्रयोजन के अनुसार रुद्र ने अपनी एक ही मूर्ति को तीन प्रकार से व्यवस्थित किया है। धर्म रुद्रस्वरूप है, जगत् विष्णुस्वरूप है और समस्त ज्ञान ब्रह्मास्वरूप है। **'श्रीरुद्र रुद्र रुद्र'** इस प्रकार से जो बुद्धिमान् जपता हैं, इससे समस्त देवों का कीर्तन हो जाने के कारण वह सब पापों से मुक्त हो जाता है ।। 2-16½ ।।

कीर्तनात्सर्वदेवस्य सर्वपापैः प्रमुच्यते।
रुद्रो नर उमा नारी तस्मै तस्यै नमो नमः ।। 17 ।।
रुद्रो ब्रह्मा उमा वाणी तस्मै तस्यै नमो नमः।
रुद्रो विष्णुरुमा लक्ष्मीस्तस्मै तस्यै नमो नमः ।। 18 ।।
रुद्रः सूर्य उमा छाया तस्मै तस्यै नमो नमः।
रुद्रः सोम उमा तारा तस्मै तस्यै नमो नमः ।। 19 ।।
रुद्रो दिवा उमा रात्रिस्तस्मै तस्यै नमो नमः।
रुद्रो यज्ञ उमा वेदिस्तस्मै तस्यै नमो नमः ।। 20 ।।
रुद्रो वह्निरुमा स्वाहा तस्मै तस्यै नमो नमः।
रुद्रो वेद उमा शास्त्रं तस्मै तस्यै नमो नमः ।। 21 ।।
रुद्रो वृक्ष उमा वल्ली तस्मै तस्यै नमो नमः।
रुद्रो गन्ध उमा पुष्पं तस्मै तस्यै नमो नमः ।। 22 ।।
रुद्रोऽर्थ अक्षरः सोमा तस्मै तस्यै नमो नमः।
रुद्रो लिङ्गमुमा पीठं तस्मै तस्यै नमो नमः ।। 23 ।।
सर्वदेवात्मकं रुद्रं नमस्कुर्यात्पृथक्पृथक्।
एभिर्मन्त्रपदैरेव नमस्यामीशपार्वतीम् ।। 24 ।।
यत्र यत्र भवेत्सार्धमिमं मन्त्रमुदीरयेत्।

ब्रह्महा जलमध्ये तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ।। 25 ।।

"पुरुष रुद्रस्वरूप हैं और स्त्रियाँ उमास्वरूपा हैं– इन दोनों प्रकार के रूपों में भगवान् रुद्र और भगवती उमा को नमस्कार है। रुद्र ब्रह्मा हैं और उमा वाणी हैं। इन दोनों रूपों में रुद्र और उमा को नमस्कार है। रुद्र ब्रह्मा हैं और उमा वाणी हैं। इन दोनो रूपों में रुद्र और उमा को नमस्कार है। रुद्र विष्णु हैं और उमा लक्ष्मी हैं। उनको और उनको नमस्कार। रुद्र सूर्य हैं और उमा छाया हैं। उनको और उनको नमस्कार। रुद्र चन्द्रमा हैं और उमा तारा हैं, उनको और उनको नमस्कार। रुद्र दिवस हैं और उमा रात्रि हैं। उनको और उनको नमस्कार। रुद्र यज्ञ हैं और उमा वेदी हैं उनको और उनको नमस्कार। रुद्र अग्निदेव हैं और उमा स्वाहा हैं। उनको और उनको नमस्कार। रुद्र वेद हैं और उमा शास्त्र हैं। उनको और उनको नमस्कार। रुद्र वृक्ष हैं और उमा लता हैं। उनको और उनको नमस्कार। रुद्र गन्ध हैं और उमा पुष्प हैं। उनको और उनको नमस्कार। रुद्र अर्थ हैं और उमा अक्षर हैं। उनको और उनको नमस्कार। रुद्र लिङ्ग हैं और उमा पीठ हैं। उनको और उनको नमस्कार। इस प्रकार सर्वदेवात्मक रुद्र को पृथक्–पृथक् नमस्कार करे। मैं भी इन्हीं मन्त्रपदों के द्वारा महेश्वर और पार्वती को नमस्कार करता हूँ। मनुष्य जहाँ–जहाँ रहे, इस अर्धालीसहित मन्त्र का उच्चारण करता रहे। ब्रह्महत्यारा भी यदि जल में प्रविष्ट होकर इस मन्त्र का जप करे तो सब पापों से मुक्त हो जाता है" ।। 17–25 ।।

सर्वाधिष्टानमद्वन्द्वं परं ब्रह्म सनातनम्।
सच्चिदानन्दरूपं तदवाङ्मनसगोचरम् ।। 26 ।।
तस्मिन्सुविदिते सर्वं विज्ञातं स्यादिदं शुक।
तदात्मकत्वात्सर्वस्य तस्माद्भिन्नं नहि क्वचित् ।। 27 ।।
द्वे विद्ये वेदितव्ये हि परा चैवापरा च ते।
तत्रापरा तु विद्यैषा ऋग्वेदो यजुरेव च ।। 28 ।।
सामवेदस्तथाथर्ववेदः शिक्षा मुनीश्वर।
कल्पो व्याकरणं चैव निरुक्तं छन्द एव च ।। 29 ।।
ज्योतिषं च यथा नात्मविषया अपि बुद्धयः।
अथैषा परमा विद्या ययात्मा परमाक्षरम् ।। 30 ।।
यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रं रूपवर्जितम्।
अचक्षुःश्रोत्रमत्यर्थं तदपाणिपदं तथा ।। 31 ।।
नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं च तदव्ययम्।
तद्भूतयोनिं पश्यन्ति धीरा आत्मानमात्मनि ।। 32 ।।

"जो सबका अधिष्ठान है, द्वन्द्वातीत है, सच्चिदानन्दस्वरूप सनातन परम ब्रह्म है, मन और वाणी के अगोचर है, शुक! उसके भलीभाँति जान लेने पर यह सब ज्ञात हो जाता है; क्योंकि

सब कुछ उसका ही स्वरूप है, उससे भिन्न कुछ भी नहीं है। दो विद्याएँ जानने योग्य हैं- ये हैं परा और अपरा। उनमें अपरा विद्या यह है- ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष; तथा मुनीश्वर! इस अपरा विद्या में आत्मविषय के अतिरिक्त सब प्रकार के बौद्धिक ज्ञान का समावेश हो जाता है। अब परा विद्या वह है, जिसके द्वारा आत्मविषय का ज्ञान होता है। वह आत्मतत्त्व परम अविनाशी है। वह देखने में नहीं आता, ग्रहण नहीं किया जाता। नाम-रूप और गोत्र से वर्जित है। उसे चक्षु और श्रोत्र नहीं हैं। वह विषयातीत है, उसके हाथ-पैर नहीं हैं; वह नित्य है, विभु है, सर्वगत है, सूक्ष्म से सूक्ष्म है तथा वह कभी विकार को प्राप्त नहीं होता। वह सब भूतों का प्रभव-स्थान है, उस परमात्मा को धीर पुरुष अपने आत्मा में देखते हैं" ।। 26-32 ।।

यः सर्वज्ञः सर्वविद्यो यस्य ज्ञानमयं तपः।
तस्मादत्रान्नरूपेण जायते जगदावलिः ।। 33 ।।
सत्यवद्भाति तत्सर्वं रज्जुसर्पवदास्थितम्।
तदेतदक्षरं सत्यं तद्विज्ञाय विमुच्यते ।। 34 ।।
ज्ञानेनैव हि संसारविनाशो नैव कर्मणा।
श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं स्वगुरुं गच्छेद्यथाविधि ।। 35 ।।
गुरुस्तस्मै परां विद्यां दद्याद्ब्रह्मात्मबोधिनीम्।
गुहायां निहितं साक्षादक्षरं वेद चेन्नरः ।। 36 ।।
छित्त्वाऽविद्यामहाग्रन्थिं शिवं गच्छेत्सनातनम्।
तदेतदमृतं सत्यं तद्बोद्धव्यं मुमुक्षुभिः ।। 37 ।।

"जो सर्वज्ञ है-जिसे भूत-भविष्य-वर्तमान का ज्ञान है, जो सम्पूर्ण विद्याओं का आश्रय है, ज्ञान ही जिसका तप है, उसी से भोक्ता एवं अन्नरूप में यह समस्त जगत् उत्पन्न होता है। जो जगत् सत्य की तरह प्रतीत होता है, वह सब ब्रह्म में उसी प्रकार स्थित है, जैसे रज्जु में सर्प। वही यह अविनाशी ब्रह्म सत्य है; जो इसको जानता है, वह मुक्त हो जाता है। ज्ञान से ही संसार-बन्धन का नाश होता है, कर्म से नहीं। अतएव मुमुक्षु को विधिपूर्वक श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ अपने गुरु के पास जाना चाहिये। तब गुरु उसे ब्रह्म और आत्मा के एकत्व का ज्ञान करानेवाली पराविद्या प्रदान करे। यदि पुरुष गुहा में निहित उस अक्षरब्रह्म को साक्षात् कर लेता है तो अविद्यारूपी महाग्रन्थि को काटकर वह सनातन शिव के पास पहुँच जाता है। यही वह अमृतरूप सत्य है, जो मुमुक्षुओं को जानना चाहिये" ।। 33-37 ।।

धनुस्तारं शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ।। 38 ।।

लक्ष्यं सर्वगतं चैव शरः सर्वगतो मुखः।
वेद्धा सर्वगतश्चैव शिवलक्ष्यं न संशयः ।। 39 ।।
न तत्र चन्द्रार्कवपुः प्रकाशते न वान्ति वाताः सकला देवताश्च।
स एष देवः कृतभावभूतः स्वयं विशुद्धो विरजः प्रकाशते ।। 40 ।।
द्वौ सुपर्णौ शरीरेऽस्मिञ्जीवेशाख्यौ सह स्थितौ।
तयोर्जीवः फलं भुङ्क्ते कर्मणो न महेश्वरः ।। 41 ।।
केवलं साक्षिरूपेण विना भोगं महेश्वरः।
प्रकाशते स्वयं भेदः कल्पितो मायया तयोः ।। 42 ।।
घटाकाशमठाकाशौ यथाकाशप्रभेदतः।
कल्पितौ परमौ जीवशिवरूपेण कल्पितौ ।। 43 ।।
तत्त्वतश्च शिवः साक्षाच्चिज्जीवश्च स्वतः सदा।
चिच्चिदाकारतो भिन्ना न भिन्ना चित्त्वहानितः ।। 44 ।।
चितश्चिन्न[1] चिदाकार[2]द्भिद्यते जडरूपतः।
भिद्यते चेज्जडो भेदश्चिदेका सर्वदा खलु ।। 45 ।।
तर्कतश्च प्रमाणाच्च चिदेकत्वव्यवस्थितेः।
चिदेकत्वपरिज्ञाने न शोचति न मुह्यति ।। 46 ।।
अद्वैतं परमानन्दं शिवं याति तु केवलम् ।। 47 ।।
अधिष्ठानं समस्तस्य जगतः सत्यचिद्घनम्।
अहमस्मीति निश्चित्य वीतशोको भवेन्मुनिः ।। 48 ।।
स्वशरीरे स्वयं ज्योतिःस्वरूपं सर्वसाक्षिणम्।
क्षीणदोषाः प्रपश्यन्ति नेतरे माययावृताः ।। 49 ।।
एवं रूपपरिज्ञानं यस्यास्ति परयोगिनः।
कुत्रचिद्गमनं नास्ति तस्य पूर्णस्वरूपिणः ।। 50 ।।
आकाशमेकं संपूर्णं कुत्रचिन्नैव गच्छति।
तद्वत्स्वात्मपरिज्ञानी कुत्रचिन्नैव गच्छति ।। 51 ।।
स यो ह वै तत्परमं ब्रह्म यो वेद वै मुनिः।
ब्रह्मैव भवति स्वस्थः सच्चिदानन्दमातृकः ।। 52 ।।
इत्युपनिषत् ।। ।। ॐ सह नाववत्विति शान्तिः ।। हरिः ॐ तत्सत् ।।

(इति रुद्रहृदयोपनिषत्समाप्ता)

1. कहीं-कहीं पर 'चितश्चेन्न' पाठ मिलता है।
2. कहीं-कहीं पर 'कारा भिद्यते' पाठ मिलता है।

" प्रणव धनुष है, आत्मा बाण है और ब्रह्म वह लक्ष्य कहलाता है। उसको प्रमादरहित होकर बींधना (चिन्तन करना) चाहिये तथा लक्ष्य में घुसे हुए बाण की भाँति ही उस ब्रह्म में तन्मय हो जाना चाहिये। लक्ष्य अर्थात् ब्रह्म सर्वगत है। शर अर्थात् आत्मा सब ओर मुखवाला है और वेद्धा अर्थात् साधक यदि सर्वगत हो तो शिवरूप लक्ष्य की प्राप्ति में संशय नहीं रह जाता। जहाँ चन्द्रमा और सूर्य का विग्रह प्रकाशित नहीं होता, जहाँ वायु तथा सम्पूर्ण देवताओं की भी गति नहीं है, वे ही ये तेजोमय परमात्मा साधक के द्वारा चिन्तन करने पर अपने विशुद्ध एवं रजोगुणरहित स्वरूप से प्रकाशित होते हैं। इस शरीररूपी वृक्ष में जीव और ईश्वर नाम के दो पक्षी निवास करते हैं। उनमें जीव कर्मों का फल भोगता है, महेश्वर नहीं। महेश्वर कर्मफल का भोग न करते हुए केवल साक्षीरूप में प्रकाशित हो रहा है, उसमें जीव और ईश्वर का भेद माया के द्वारा कल्पित है। जिस प्रकार घटाकाश और महाकाश आकाश के ही कल्पित भेद हैं, उसी प्रकार परमात्मा के जीव और ईश्वररूप भेद भी कल्पित हैं। वस्तुत: तो चिन्मय जीवात्मा स्वत: साक्षात् शिव है। जीव और ईश्वर में जो चित् है, वह चित् के औपाधिक आकार-भेद से भिन्न-भिन्न प्रतीत होता है, स्वरूपत: भिन्न नहीं है; क्योंकि स्वरूपत: भेद होने पर तो दोनों की चित्स्वरूपता की ही हानि हो जायगी। (जड़ वस्तु में ही स्वरूपगत भेद होता है, चित् में नहीं।) चित् से जो चित् का भेद कहा जाता है, वह चिदाकारता (चिन्मयता) से नहीं, अपितु जड़रूप उपाधि के ही कारण है। यदि भेद है तो वह भेद जड़रूप ही है। चित् तो सर्वत्र एक ही होता है। युक्ति और प्रमाण से चित् की एकता ही निश्चित होती है; इसलिये जब पुरुष को चित् के एकत्व का परिज्ञान हो जाता है, तब वह न शोक को प्राप्त होता है न मोह को। वह केवल अद्वैत परमानन्दस्वरूप शिव-भाव को प्राप्त हो जाता है। समस्त जगत् का अधिष्ठान वह सत्यस्वरूप चिद्घन परमात्मा है। मुनिलोग उसे **'अहम् अस्मि'** (वह परमात्मा मैं ही हूँ) ऐसा निश्चय करके शोकरहित हो जाते हैं। अपने अन्त:करण में स्वयंज्योति:स्वरूप सर्वसाक्षी परमात्मा को वे ही पुरुष देखते हैं, जिनके दोष क्षीण हो गये हैं; जो माया से आवृत हैं, वे इतर प्राणी नहीं देख सकते। जिस महायोगी को इस प्रकार स्वरूप-ज्ञान हो गया है, उस पूर्णस्वरूपता को प्राप्त हुए सिद्ध महात्मा का कहीं आना-जाना नहीं होता। जिस प्रकार एक और पूर्ण आकाश कहीं नहीं जाता, उसी प्रकार अपने आत्मतत्त्व का अनुभव करनेवाला ज्ञानी महात्मा कहीं नहीं जाता। जो मुनि निश्चयपूर्वक उस परम ब्रह्म को जानता है, वह अपने स्वरूप में स्थित हो, सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म ही हो जाता है" ।। 38-52 ।।

(उपर्युक्त पाठ ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषद:, जो श्री वासुदेव लक्षमण पणशीकर द्वारा संपादित तथा चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी द्वारा 1991 में प्रकाशित है, से लिया गया है। मूल पाठ का अर्थ गीताप्रेस गोरखपुर द्वारा प्रकाशित उपनिषद् अंक से लिया गया है।)

❁❁❁❁❁❁